शैलेश मटियानी

शैलेश मटियानी (14 अक्टूबर, 1931—24 अप्रैल 2001) आधुनिक हिन्दी साहित्य-जगत् में नयी कहानी आन्दोलन के दौर के कहानीकार एवं प्रसिद्ध गद्यकार थे। शैलेश मटियानी का जन्म उत्तराखंड राज्य के कुमाऊँ क्षेत्र के अन्तर्गत अल्मोड़ा जिले के बाडेछीना नामक गाँव में 14 अक्टूबर, 1931 को हुआ था। उनका मूल नाम रमेशचन्द्र सिंह मटियानी था। बारह वर्ष की अवस्था में उनके माता-पिता का देहांत हो गया था, तब वे पाँचवीं कक्षा में पढ़ते थे। विकट परिस्थितियों के बावजूद उन्होंने हाईस्कूल परीक्षा उत्तीर्ण की तथा रोजगार की तलाश में पैतृक गाँव छोड़कर 1951 में दिल्ली आ गए। 'जंगल में मंगल', 'प्यास और पत्थर' उनके प्रसिद्ध कहानी संग्रह हैं। 'बोरीवली से बोरीबन्दर', 'कबूतरखाना' उनके चर्चित उपन्यास हैं। 1992 में छोटे पुत्र की मृत्यु के बाद उनका मानसिक सन्तुलन बिगड़ गया। विक्षिप्तता की स्थिति में उनकी मृत्यु दिल्ली के शाहदरा अस्पताल में हुई।

कथा सार

'उसने तो नहीं कहा था' शैलेश मटियानी की मौलिक कहानी है। यह कहानी चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की प्रसिद्ध कहानी 'उसने कहा था' की तरह की कहानी है। यह कहानी लछिमा ठकुरानी, जसवंतसिंह और कुँवरसिंह के प्रेम त्रिकोण की कहानी है। लछिमा ठकुरानी 22-23 वर्ष की विधवा तरुणी है। वह तीन बार विधवा हो चुकी है। परिणामस्वरूप 'खसम को टोकने' (पति को मारना) के लिए वह बदनाम है। कुँवरसिंह और जसवंतसिंह दोनों को जब से उसने देखा है तब से दोनों को अपना दिल दे चुकी है। वह कहती है—'मुझे तो लगता है, दो पर्वतों के बीच में नदी की तरह अटक गई हूँ'। कुँवरसिंह के एक वर्ष तक परदेश जाने पर लछिमा ठकुरानी जसवंतसिंह से ब्याह कर लेती है। तबसे कुँवरसिंह जसवंतसिंह का दुश्मन बन गया है। दोनों फौज में भर्ती हो जाते हैं। एक बार वादियों में दुश्मन की फौज से कुँवरसिंह, जसवंतसिंह को बचा लेता है। तब

जसवंतसिंह कहता है—'तुमने मुझे दुश्मन से बचाया है, क्या उसने तो नहीं कहा था?' कुँवरसिंह का कहना 'उसने तो नहीं कहा था' लेकिन मेरी आत्मा ने कहा था कि एक फौज के दो सिपाही जो धरती माँ की रक्षा करने निकले हों उन्हें अपना कर्तव्य निभाना है। इस कहानी में प्रेम के त्रिकोण के साथ मातृभूमि की रक्षा का कर्तव्य भी है। यह शैलेश मटियानी की एक मौलिक कहानी बन गई है।

उसने तो नहीं कहा था

राइफल की बुलेट आड़ के लिए रखी हुई शिला पर से फिसलती हुई जसवंतसिंह के बाएँ कंधे में धँसी थी, मगर फिर भी काफी गहरी चोट लग गई थी। उसकी आँखें इस वेदना से पथराकर यों घूम गई थीं, जैसे गोली खेलने में माहिर छोकरे अपने अँगूठे और तर्जनी में दबाकर, काँच की बिल्लौरियों को ऐसे घुमा देते हैं कि बिल्लौरियाँ घूमती रह जाती हैं, एक दायरे में, और कच्ची सड़क की धूल उन्हें ढँकती चली जाती है।

जसवंतसिंह की आँखों की पुतलियाँ अपनी ही धुरी पर घूमती चली गई थीं और उसे लगा था कि उसके आस-पास की घाटी का सारा कोहरा एकदम तेजी से सिमटता हुआ, उनकी आँखों को ढाँप रहा है। उसे ऐसा लग रहा था, जैसे कोई अदृश्य शक्ति उसे उलटती-पलटती, पर्त-दर-पर्त, सफेद कफन में लपेटती ही चली जा रही है। अचानक ही, सिर्फ एक क्षण के लिए जसवंतसिंह को अपने पिथौरागढ़ शहर के दर्जी शेरू मियाँ की घरवाली लछिमा बीबी की याद आ गई थी—पाँव के अँगूठे से लेकर सिर तक बुर्के में ढँकी हुई।

एक और आकृति, चोट खाए फनियर की आँखों में उतरे हुए प्रतिबिम्ब की तरह, अपनी ही धुरी पर गोलाकार घूमती हुई पुतलियों पर छा गई है—सामने के टीले पर राइफल साधे हुए कुँवरसिंह की। लक्ष्मी एक ठोर नहीं टिकती, मगर लछिमा ठकुरानी तो एक ठोर जरूर टिक गई है।

बुलेट की चोट का अंधा कोहरा पुतलियों पर से धीरे-धीरे छँटने लगा, तो जसवंतसिंह ने घाटी के कोहरे को भेदने की भी चेष्टा की। कंधे पर से खून बहता जा रहा है, इतनी सुधि रहते भी—जसवंतसिंह अपने कंधे को सिर्फ दाएँ हाथ से दाबे ही रह गया...कुँवरसिंह उसी की ओर बढ़ता चला आ रहा है। जसवंतसिंह को बड़ा आश्चर्य हो रहा था कि कोहरे की दीवारों के पार, पत्थर की ओट में छिपे रहने के बावजूद दुश्मन के सिपाहियों ने इतना सही निशाना कैसे साध लिया।

...और कोहरे की दीवारों के पार मरते अपने दुश्मन को—जसवंत को—चुपचाप देखते रहने की जगह, कुँवरसिंह ने अपनी राइफल दुश्मन के सिपाहियों की ओर क्यों मोड़ ली ?

जसवंतसिंह सोच रहा था कि गश्ती टुकड़ी के बिखरने के मूल में कुँवरसिंह की साजिश थी कि अकेले पड़ जाएँ, तो कुँवरसिंह उसे मार डाले।

कुँवरसिंह कोहरे को चीरता हुआ आगे बढ़ रहा है। जहाँ चट्टानों पर कोहरा फैल कर झीना पड़ गया है, कुँवरसिंह दिखाई दे गया है और जसवंतसिंह को लगा कि आज कुँवरसिंह बार-बार लछिमा बीबी का सफेद बुर्का उतार रहा है।...और उसे लग रहा है, कुँवरसिंह आज फिर, उसके-अपने बीच का नहीं लछिमा बीबी और लछिमा ठकुरानी के बीच का फ़ासला तय कर रहा है, 'क्यों, ठकुरानी बीबी! तेरा ब्या हो गया क्या?'

बिलाई गाँव में भी ऊँचे चुटीले टीले-पर्वतों की कमी नहीं है। इतना ही घना कोहरा वहाँ भी छा जाया करता है। इतने ही उतार-चढ़ावों वाली घाटियाँ वहाँ भी हैं, मगर यहाँ की बंजर घाटियों की तुलना में बहुत ही उपजाऊ। जसवंतसिंह सोचता है कि अगर कभी वहाँ के खेतों में युद्ध लड़ा गया, तो पहले लहलहाती फसलें रौंदी जाएँगी, क्योंकि ऊँची फसल के पार छिपे हुए, कोहरे के आवरण में बिलकुल गेहूँ के पौधों की तरह लिपटे हुए जसवंतसिंह पर कंजी आँखें निशाना साध नहीं पाएँगी—राइफलों की मक्खियों के समानांतर गेहूँ की बालिश्त-ऊँची बालियाँ झूलती चली जाएँगी...और सिपाही चाहे किसी देश का हो, हिन्दुस्तान का या चीन का—किसान से सिपाही बनकर जो आता है, यह अन्न की झूलती बालियों पर सही निशाना नहीं साध सकता! जिस तरह गेहूँ की बालियों की बनावट नहीं बदलती, किसी भी देश के किसानों का वह अन्नमोह नहीं बदलता है, जो ओलों से फसल टूटने पर भी कमर टूटने की-सी यातना से व्यथित हो उठता है।...और इसीलिए जब किसान सिपाही बनकर लड़ता है, तो फसलों के टूटने से पहले अपने कंधों की हड्डियाँ टूटने पर भी मौत के भय से कातर नहीं होता।

कुँवरसिंह!...जसवंतसिंह ने लछिमा ठकुरानी को उस घर ही थिरते देखा। नहीं तो लक्ष्मी ठहर जाती है, लछिमा नहीं ठहरती थी। रंगीन चूड़ियों-फुन्नों के ठेकेदार, फैशनेबुल कपड़ों के दर्जी शेरू मियाँ के यहाँ भी वह नहीं टिकी थी...

जसवंत और कुँवर दोनों, दाएँ-बाएँ बैल-जैसे, एक साथ शहर आया करते थे। सिलंगटोला के पास के चामुंडा देवी के मन्दिर से बाहर निकल कर, पास की झाड़ी में छिपाया हुआ बुर्का पहन कर लौटती हुई लछिमा बीवी को बहुत दूर से देखा था, उस दिन उन्होंने।

और कुँवरसिंह बोल उठा था, 'क्यों, जसवंत, यह मुसलमानी चामुंडा देवी के मन्दिर में क्यों गई होगी?'

जसवंत बोला था, 'मुसलमान हिन्दुओं के देवताओं को भ्रष्ट करते हैं, सुना तो होगा तूने?'

'अरी, ओ मुसलमानी!'—ऊँचे टीले पर से जसवंत ने आवाज दे दी थी, 'अरी ओ बुर्केवाली बीबी!'

बुर्के वाली बीबी ठहर गई थी, 'हे मैया, तू ही रक्षा करना। देख लिया है, शायद, किसी ने मन्दिर में जाते।'

'क्यों बीबी, क्या करने गई थी देवी के मन्दिर में?'

'अरी, ओ मुसलमानी, बोलती क्यों नहीं?'

कोहरे से ढँके गाछ जैसी बुर्केवाली चुपचाप खड़ी थी। जाली से दोनों तरुण छोकरे उसे दिखाई दे रहे थे। दोनों की आँखों में सुलगता रोष भी दिखाई दे रहा था।

'अरे यार, अल्मोड़ा की नयानियों ने बुर्का क्या ओढ़ लिया, सफेद आसमान पर उड़ती फिरती हैं, सुसरियाँ!' जसवंत ने व्यंग्यपूर्वक कहा था और कुँवरसिंह ने बाज की तरह झपट कर बुर्का उतार लिया था—कोहरा छँटने के बाद, ओस की बूँदों से झिलमिलाते हुए गाछ-जैसी लछिमा काँप उठी थी। फिर साहस जुटा कर बोली थी, 'मुसलमानी नहीं ठकुरानी हूँ, ठाकुर! और क्या मुसलमानी किसी की बहू-बेटी नहीं होती, ठाकुर?'

'ओहो, यह तो शेरू मियाँ की ठकुरानी है?'—दोनों अल्हड़ एकाएक खिलखिला उठे थे, 'खसम-टोकुवा ठकुरानी?'

और खसम.'टोकने' के लिए बदनाम ठकुरानी एकदम रो पड़ी थी। जसवंत और कुँवर दोनों ही जानते थे कि शेरू मियाँ के यहाँ अब के जो ठकुरानी बीबी बन कर घर बैठी है, वह तीन बार की विधवा है।

दो-तीन महीने पहले ही सुनी थी दोनों ने यह खबर शहर में और दोनों की धारणा यही थी कि कोई विकराल प्रौढ़ा होगी...मगर सामने बिलखती ठकुरानी बीबी तो कहीं भी इतनी विकराल या विषैली लगती नहीं थी कि तीन-तीन हत्याओं की प्रतीति उस पर थोपी जाए! मुश्किल से 22-23 वर्षों की, तरुणी। लछिमा ठकुरानी अब भी घाघरा-आँगड़ा ही पहने हुए थी और बुर्का उतारने के बाद तो वह साक्षात ठकुरानी ही लग रही थी—मुर्गे हाँकने वाली बीबी नहीं, दातुली की मूठ बजाते हुए खेत-वन जाने वाली ठेठ ठकुरानी! कोहरा छँट जाने के बाद ओस चुआती नींबू की फली डाल-जैसी ठकुरानी।

'क्यों बीबी, चौथा शेरू मियाँ भी मर गया क्या? यों रुद्रकलश-जैसी क्यों फूट रही है भला? कौन-सा ऐसा गला रेत दिया तेरा हमने?' अब के कुँवरसिंह के स्वर में संवेदना थी।

'जिसके लिए ईश्वर ही मर गया हो, उसे कोई जिन्दा भी क्या सुख दे सकता है, ठाकुर! फूटे हुए कलश में टाँके तो लग जाते हैं, टूटा हुआ हिया कहाँ जुड़ता है भला?'

चौमासे में खिसकी हुई चट्टान-जैसी लछिमा ठकुरानी को थिरने को कहीं ठौर ही नहीं मिली थी। एक बार सात बरस की उमर में ही विधवा बनी थी, दूसरी बात तेरहवें वर्ष में और तीसरी बार पिछले ही बरस। शेरू मियाँ दर्जी और मणिहार दोनों

था। कपड़े-चूड़ियों की गठरी गाँव-गाँव फिराता रहता। लछिमा की कहानी सुनो, तो धीरे-धीरे चूड़ियाँ चढ़ाने लगा...एक दिन लछिमा ने व्यंग्य कस दिया था, 'मियाँ, तुम्हें भी कबर तक पहुँचाना है क्या?' मगर शेरू मियाँ का उत्तर था, 'तेरे लिए तो जीते जी कब्रिस्तान में जाने को तैयार हूँ, ठकुरानी?'

'तूने मियाँ के साथ निकाह कर लिया है; ठकुरानी? मुर्गों से तेरा हिया नहीं घिनाता?' कुँवरसिंह ने पूछा था; 'मुसलमान से ब्याह करते तेरा कलेजा नहीं दरका, लछिमा?'

'छाछ बिलोते में रौली के फिरके गिने जाते हैं, ठाकुर! प्यार करने में मरद का फिरका नहीं देखा जाता। जात-फिरका तो बाहर की औरत देखती है, भला अन्दर की औरत तो पुरुष की शरण चाहती है।' लछिमा ठकुरानी कह गई थी मगर शरमा भी इतनी गई थी कि बुर्का लेने का भी होश नहीं रहा। सड़क-पार ढलने लगी, तब होश आया कि बिना बुर्के के देखेंगे तो मियाँ ताने देंगे। लौटी थी, तो जसवंत के टोकते-टोकते भी, कुँवरसिंह ने उसकी बाँह पकड़ ली थी, 'उतरा हुआ बुर्का फिर ओढ़ना चाहती हो, लछिमा?'

कुँवरसिंह का जीवट, कुँवरसिंह का जोश बहुत निकट से देखा है जसवंत सिंह ने। अक्षरों का पूरा ठाकुर वही देखा है। लाख शेरू मियाँ ने छुरा मारने की धमकी दी, मगर सिर्फ खाली बुर्का ही से वापस मिला। लाख जात-बिरादरी के लोगों ने रोका-टोका, मगर लछिमा ठकुरानी कुँवरसिंह से नहीं छूटी। घर उसने छोटा-सा अलग बसा लिया। पानी का नौला उसने अलग बना लिया। छोटे-से सोते को बाँध कर, लछिमा ठकुरानी की गागर डूबने-जितना गहरा बना दिया। जसवंत सिंह ने ही तो उसे लछिमा ठकुरानी का नौला, कहा था!...कुँवरसिंह फासले को काटता जा रहा है...

और जसवंतसिंह की आँखें बन्द होने लगती हैं ग्लानि से कि शुरू में खुद वह जीवट नहीं दिखा सका था, मगर एक बरस कुँवरसिंह परदेश क्या रहा, लछिमा उससे भी नहीं छूटी थी।

लछिमा कहती थी, 'देवी मन्दिर से निकली थी, तो तुम दोनों की राम-लक्ष्मण की जैसी जोड़ी देखी थी—हिया बराबर-बराबर बँट गया है।'

जसवंत सिंह ने लछिमा ठकुरानी को बहुत निकट से देखा है। न जाने कैसा मन है लछिमा ठकुरानी का, मोह-ममता रीतती ही नहीं उस की। कहती थी, 'मुझे तो लगता है, दो पर्वतों के बीच में नदी की तरह अटक गई हूँ।'

औरत दो पर्वतों के बीच भले ही नदी-जैसी बहती हुई, दोनों ओर की धरती सींचती रहे, मगर पुरुष तो दो वादियों के बीच भी पर्वत जैसा ऊपर ही उठा रहना चाहता है।

परदेश से लौटा था, तो लछिमा ठकुरानी ने खुद ही बता दिया था और एक दिन सिसकती-सिसकती कह गई थी, 'मैंने सोचा था, कुँवर फिर खिलखिला उठेगा

कि क्यों दो-दो को एक साथ टोकना चाहती है ?...मगर कुँवर ने मेरे मुँह पर थूकते हुए कह दिया है, या तो तुम्हारे घर बैठूँ, या कुँवर के ही। कुँवर ठाकुर कहता है, 'तू जसवंत के चली जा, तो मैं आत्मघात कर लेता हूँ। मेरे घर रहती है, तो मैं उस की हत्या कर दूँगा।'...और वह कहता है, 'तू आखिर में जरूर दोनों को टोकेगी!'...ठाकुर, मेरे हृदय को चीर सकोगे ? देख सकोगे, मेरी बावली आत्मा को ? एक महतारी जैसे कई छौनों को सँभालती है, ऐसी ही ममता से मैंने तुम दोनों को सँभाला था। मैं तो पातर-चरित्र भ्रष्टा ही हूँ ठाकुर, मगर ममता भ्रष्ट नहीं हुआ करती। तभी तो कहती हूँ, या तो ईश्वर ने इतना पागल हिया नहीं दिया होता, या द्रौपदी के जैसे पांडव दिए होते। मैं तो पातर-की-पातर ही बनी रही, खसम टोकने का कलंक और झेलती रही हूँ। मैं किसे चीर के दिखाऊँ अपना कपाल कि खसम तो मैंने भोगे ही नहीं, छोकरों को सँभालती थी, उन से भी दूर ही हूँ...आज से तुम अब मेरा मुँह नहीं देख पाओगे, ठाकुर...

और जसवंतसिंह पलटन में भर्ती हो गया था। भर्ती होने के बाद उसने लछिमा को लेकर कई स्तरों पर सोचा था।

जसवंत ने लछिमा को समझा-बुझा दिया था, 'दुनियादार पुरुष का मन तुम्हें क्षमा नहीं कर सकता, ठकुरानी! मगर ईश्वर जरूर क्षमा करेगा। कुँवर सिंह को तुझसे अपार मोह है, लछिमा! औरत की ममता दोस्तों में बँटने की चीज नहीं होती। वेश्या को कोई भी बाँट लेता है। वह तुम्हें अपनी घरिणी समझता है, इसलिए बिफर उठा है। पिता का बनाया हुआ घर भाइयों में बँटता है तब भी घर की कोई बहू किसी दूसरे के हिस्से नहीं लगाई जाती। तुमने दुख ही तो भोगा है, ठकुरानी! सुख भी भोगो कुछ।'

बहुत तटस्थ हो कर सोचा था, मगर उसका अपवाद नारी-रूप भी पकड़ में नहीं आया था।

अब तो बरसों बीत गए हैं।

उसके बाद ही पैतृक सम्पत्ति से बेदखल कुँवरसिंह भी पलटन में भर्ती हो गया था...और जब भी आमना-सामना हुआ है, उसकी प्रतिहिंसा से सुलगती आँखों के पीछे जसवंत को एक बहुत ही क्रूर संकल्प दिखाई देता रहा है। वही क्रूर संकल्प, जो बरसों पहले कुँवरसिंह की आँखों में अंकुर की तरह फूटा था और अब बढ़ता चला गया है। कँटीले का यह झाड़ बीच में खड़ा है बरसों से। जसवंतसिंह ने बार-बार इस झाड़ को काटना चाहा है मगर बार-बार उसे यही लगा है कि कुँवरसिंह कँटीले के झाड़ के रूप में ही उसे देखता है, दोस्त के नहीं।

...और आज जसवंतसिंह मौत की खाई में दफन हो ही जाता; कि कुँवरसिंह ने उसे बचा लिया है! अपनी ओर निशाना साधने वाले दुश्मन के दोनों सिपाहियों को कुँवरसिंह की गोलियों से मरते हुए खुद तो जसवंतसिंह नहीं देख सका था; मगर

अनुमान जरूर हुआ था। जसवंतसिंह को एक यह सन्तोष अवश्य था कि अच्छा हुआ, दुश्मन के सिपाहियों को कोहरे के पार भी उसने देख लिया था। अन्यथा, उसे कुँवरसिंह पर ही सन्देह होता कि उसने ही मुझ पर गोली चलाई है।

फासला और घटता जा रहा है। कोहरा और छँटता जा रहा है।...मगर लछिमा ठकुरानी का फासला नहीं घटता है, लगता है कुँवरसिंह की आँखों का कँटीला गाछ कभी नहीं कटेगा। लगता है, द्वेष का जो कोहरा है, वह आँखों की पुतलियों पर से कभी छँटेगा नहीं और कँटीले के गाछ की जड़ों का उच्छेद कभी हो नहीं पाएगा...

'कुँवर, एक मग पानी और पिला दे, भाई! यहाँ का पानी भी उतना ही ठंडा है।'

जसवंतसिंह कहना चाहता था, 'जितना लछिमा ठकुरानी के नौले का?' मगर कह नहीं सका।

शिविर की चारपाई पर होश में आने के बाद ही जसवंतसिंह सोच सका, कुँवरसिंह की आँखों में उसको अपनी ही शंका का प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ता था...कुँवरसिंह कहता था, 'यार, तुझे आँखों के सामने देखकर भी यों नहीं बोल पाता था, कहीं तेरे दिल में यही मलाल न हो कि मैंने लछिमा को तुझे प्यार नहीं करने दिया?'

फिर एकाएक उसकी आँखें गीली हो आई थीं, 'लछिमा की जिन्दगी के बाहरी खोल सभी ने देखे, जसवंत, उसकी आत्मा का दर्द कोई नहीं पहचान सका। मैं उसके प्यार को भी तिलांजलि दे सकता था, मगर मैंने उसका दर्द टटोल लिया था और उस दर्द को खो सकने की कठोरता मैं कभी बटोर नहीं सका। जब से बच्चे हो गए, तब से तो लछिमा बहुत बदल गई है। तेरा जिक्र भी नहीं करती थी...'

कुँवरसिंह ने कहा जो सही, मगर, 'जिक्र नहीं करती थी' कहते हुए, उसकी आवाज कुछ काँप-सी गई। जसवंतसिंह को लगा, कुँवरसिंह सिर्फ दर्द को ही नहीं, प्यार को खो देने का साहस भी कभी नहीं बटोर सकता।

लगातार दो दिन, दो रात कुँवरसिंह जसवंत की चारपाई से लगा रहा। जसवंत उसे अपना एक सपना बताना चाहता था कि 'सपने में तू तो, यार, मुझे गोली से उड़ा देना चाहता है; मगर तभी तुझे लछिमा ठकुरानी के वचन याद आ जाते हैं कि—अब तुम दोनों में से किसी को भी कुछ हुआ, तो दुनिया न कहे, मगर मेरी आत्मा को तो कलंक लग ही जाएगा। सच बता, कुँवर, तूने जो मेरी हत्या का संकल्प त्याग दिया, कहीं लछिमा ठकुरानी के कहने पर ही तो नहीं?'

लेकिन संकोच टूटा नहीं। दूसरे यह भी सम्भावना थी, कुँवरसिंह बुरा न मान जाए। वह कहना चाहता था, 'अब तो ठकुरानी दो बच्चे की माँ है। मेरे मन में अब वह एक माँ भी है, सिर्फ औरत नहीं।' मगर कह नहीं सका था।

नहीं ही रहा गया तो दूसरे ढंग से पूछ लिया—'मुझे तुमने मरते-मरते बचा लिया, कुँवर!...तुम्हें ऐसी इच्छा नहीं हुई कि मरने दो सुसरे को?'

कुँवरसिंह की आँखों में एक चमक तैर आई; 'लगातार यही बात तो तुम्हें बेध रही है जसवंत, कि तुम्हारी हत्या करने की बात कहकर भी जो मैंने तुम्हें मौत से बचाया है, तो कहीं उसी ने तो नहीं कहा था?' बोलते-बोलते कुँवरसिंह का कंठ भर आया था, 'उसकी आत्मा में क्या भावना रही, नहीं जानता, भाई मेरे!...मगर मेरे मुँह पर कभी भी उसने कुछ कहा नहीं। मुझे जो तुझसे यह द्वेष था कि तूने दोस्त होकर भी मुझे परदेश में जाने पर धोखा दिया; वह धुँधला जरूर पड़ गया था...मैं तेरी हत्या करना नहीं चाहता था।...मगर शायद, मैं दुश्मनों के हाथों से तुझे मरते देखकर, कठोर बनकर, चुपचाप तटस्थ तो रह सकता था।...मगर...उसने भले ही नहीं कहा था जसवंत! लेकिन मेरी आत्मा ने उस क्षण जरूर दो बातें कहीं...'

कुँवरसिंह की आँखों का कोहरा ओस की तरह चूता चला गया, 'एक तो यह कि तू और मैं यहाँ एक ही फौज के दो सिपाही हैं—और हम दोनों पर सिर्फ एक-दूसरे की ही रक्षा का नहीं, बल्कि उस धरती की रक्षा का भी बोझ है, जो सैकड़ों मील के इस लंबे फासले पर से अब इस वक्त हमारे विलाई गाँव तक फैलती चली गई है...यह 'लछिमा ठकुरानी का नौला' और चामुंडा देवी का मन्दिर है...और...दूसरी यह कि तू मारा गया और तेरे मरने का तार तेरे घर पहुँचा...लछिमा ठकुरानी तक भी बात पहुँची, तो कहीं उसकी पीड़ित आत्मा सचमुच न बिलख पड़े कि कभी तुझे भी उसने प्यार किया था, सो तू भी मारा गया!...और मुझे भी वह प्यार करती है, तो कहीं मैं भी न मारा जाऊँ...पानी और पियेगा, ठाकुर?'

जसवंतसिंह ने उसकी छलछलाती आँखों पर अपनी काँपती हुई हथेलियाँ रख दीं, तो उसे लगा कि वह लछिमा ठकुरानी के प्रतिबिम्ब को छू रहा है...और उसे लगा कि लछिमा ठकुरानी के नौले का ठंडा पानी उसकी अँगुलियों के जोड़ों में से चूने लगा है...